ISSN : 2320–1274

वेब अंक
www.notnul.com

परिकथा

समय और समाज की परिक्रमा

अक्टूबर-दिसम्बर, 2026

मूल्य : 100 रुपये



अंक
113

आलोचनात्मक टिप्पणियाँ

परिकथा-112

शब्द-यात्री की दो आँखें

प्रो. भरत प्रसाद

'परिकथा' पत्रिका का नया अंक, जो सामान्य अंक होकर भी विशेष होने की ध्वनि समेटे हुए है, पठनीय तो हैं ही, बहसतलब भी है। समकालीन आलोचना के प्रतिनिधि हस्ताक्षर नामवर सिंह, हमारे बीच उपस्थित न होकर भी किसी न किसी बहाने उपस्थित होते ही रहे हैं। नामवर जी वह कल हैं, वह मोर्चा हैं, चुनौती और प्रेरणा हैं, जो किसी बुद्धिजीवी को बचकर निकल लेने का मौका नहीं देते। स्वयं नामवर जी सभाओं, गोष्ठियों में चुभने वाले, असहज करने वाले तत्काल असहमत कर देने वाले सवाल उठाते थे। उनका आलोचकीय साहस 'एकला चलो रे' अंदाज का था। वे समर्थन दर्ज कराते थे तो अपने दम पर। विरोध बुलंद करते थे, तो भी अपने दम पर। प्रो. शिवचंद्र प्रसाद का नामवर जी पर लेख है-'नामवरीय आलोचना की प्रासंगिकता।' नामवर जी के संदर्भ में शिवचंद्र प्रसाद जी के कुछ निष्कर्ष देखिए-

1. समय समय पर वे मार्क्सवादी रूढ़ियों को प्रश्नांकित करते हैं। मार्क्सवादी अंतर्विरोधों को भी रखते हैं।

2. वे अकविता को तांत्रिकों की कविताएँ और अज्ञेय को बड़ा चतुर आदमी बताते हैं।

3. नामवर जी का मानना है कि संस्कृति फासीवादी प्रतिक्रांति का प्रमुख हथियार होती है।

4. नामवर जी की चिंता दुनिया को सुंदर बनाने की है। इसलिए कि सुंदर दुनिया बने, एक समाज बने, जिसमें खून न दहके और चमके। बल्कि हमारे दिलों के जो रिश्ते हैं वो दमके। प्यार, मोहब्बत की दुनिया बने।

अपने सुदीर्घ जीवनकाल में नामवर जी का साहित्य कर्म विपुल है। कलमी आलोचक के तौर पर और मौखिक आलोचक के रूप में भी। बहस, विवाद, अहसमति से लगभग प्रतिदिन दो-चार होने के बावजूद साहित्यिक जगत में उनकी स्वीकार्यता स्थायी बनी। वे सैद्धांतिक आलोचक नहीं, व्यावहारिक आलोचक बने। यहाँ तक कि साहित्य की सैद्धांतिकी को अत्यंत व्यावहारिक बनाने में कुशल थे। जटिलता न उनकी भाषा में है, न विचारों में, न निष्कर्षों में। यह अवश्य है कि वे सरल स्वभाव के न थे। मौके की नजाकत भाँप लेने में कुशल। विरोधी को कैसे पछाड़ा जाये, इसकी कला बखूबी जानते थे। उनके छोटे भाई प्रसिद्ध कथाकार काशीनाथ जी ने उनके संदर्भ में 'बात बात में बात' वाला मुहावरा जो लागू किया, वह नामवर जी पर सटीक बैठता है।

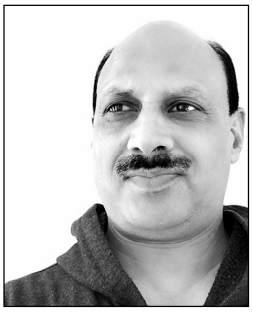
'हजार हम उसे चाहें कि अब न चाहें।' रुकिए, सुनिए! यह किसी गजल का आगाज नहीं, न ही किसी तराने का रियाज है। यह तो नामवर जी के बहाने नामवरीयत की याद है। याद कर्ता हैं-धनेश दत्त पाण्डेय। निर्मल वर्मा की 'परिंदे' कहानी को मानक दर्जा नामवर जी ने दिया, दो मत नहीं। धनेश जी ने आलोचना की व्यक्तिगत गंभीरता के साथ 'परिंदे' कहानी की परतों को खोला है। इस लेख में लेखक ने आज के बुजुर्ग कवि, कभी किसी दौर में साहित्य के प्रशासक रहे अशोक बाजपेयी की प्रतिस्पर्धात्मक मानसिकता का भी खुलासा किया है-'नामवर जी में अचूक अवसरवादिता है। उनकी वाचिक परम्परा है। जैसी मंडली हो, वैसी सेटिंग कर देते हैं।' (अशोक बाजपेयी) नामवर जी कोई भोले-भाले, सिधवा मानुष न थे। यह एक नहीं, कई साहित्यिकों का निजी अनुभव है। परन्तु इससे नामवर जी के कद का बंटाधार करना किसी ग्रंथि, कुंठा या पराजित खीझ की आहट देता है। वे सिर्फ इसलिए बड़े आलोचक नहीं कि लगभग 50 वर्षों तक हिन्दी आलोचना के अखाड़ची बने रहे। लड़े, भिड़े, दाँव मारे, गिरे बार-बार और कइयों को चित्त भी किया। 'असहमति को आलोचना की अनिवार्य शर्त' कायम करने वाले नामवर जी हैं। कथाकार अनुज के द्वारा ममता कालिया जी का लिया गया साक्षात्कार केवल इस अर्थ में ध्यातव्य नहीं कि उनकी सुदीर्घ यात्रा का आत्मकथ्य है, बल्कि इस अर्थ में अधिक प्रासंगिक है कि इससे हिन्दी साहित्य में चढ़ते-उतरते सृजन और सक्रियता के स्तर का भी पता चलता है। विगत वर्षों में लेखकों के द्वारा पुरस्कार वापसी को वे उचित नहीं ठहराती हैं-'मुझे यह आंदोलन

कुछ हद तक अटपटा लगा था। अगर आप लेखक हैं। तो अपना विरोध शब्दों में जताइए। नारे लगाना या पुरस्कार वापस करना, जो असल में तकनीकी रूप में संभव भी नहीं है, क्योंकि पैसा लौटाने का कोई प्रावधान भी नहीं है।' (जुलाई -सितंबर, 2026, पृष्ठ संख्या-31)

लेखक का मात्र शाब्दिक विरोध अवसरवादी चालाकी है। शाब्दिक विरोध का सत्ता के लिए वजनी मूल्य नहीं। शाब्दिक विरोध सकर्मक प्रतिरोध के बगैर अधूरा है। आप जो कहते हैं, लिखते हैं, रचते हैं-वह आपकी साँस-साँस से, बात-बात से, एक-एक कार्य, गतिविधि और साहसिक व्यवहार से सिद्ध होना चाहिए। यही गैर जमीनी, मानसिक, कलमी क्रांति ही तो खोखला कर गयी, साहित्य को। लेखक, कवि, आलोचक, विचारक पहले पृथ्वी का नागरिक है, देश का जिम्मेदार मनुष्य। पहले वह सार्थक मनुष्य होने की भूमिका निभाए, उसके बाद कलमकार का दायित्व। अंक के कहानीकार हैं-नर्मदेश्वर (सूई-धागा), प्रो. रामचन्द्र (बैरंग चिट्ठी), अखिलेश श्रीवास्तव चमन (रास्ते और भी हैं), वंदना मुकेश (गलत ट्रेन), कल्पना मनोरमा (माटी का आदमी), रजनी शर्मा (बिजली व्रत), अशोक कुमार (अधिनायक जय हो!), सुभाष शर्मा (राजपाट), आशीष दशोत्तर (ये सब धुआं है), शिवकिशोर (शवसाधना), अमल सिंह भिक्षुक (एक रोटी की भूख), आलोक कुमार सातपुते (जोंक)। परिकथा मूलतः कहानी और आलोचना की पत्रिका है। इसलिए इसके पृष्ठों पर कथाकारों के नाम निरंतर चमकते हैं। 'सूई-धागा' के एक चरित्र हैं-जुद्दी चाचा। गाँव-जवार के इलाकों में ऐसे लटपट नाम कदम-कदम पर टकरा जाएँगे। जिनका शाब्दिक अर्थ निकालना पृथ्वी की सबसे टेढ़ी खीर है। कहानीकार ने जुद्दी चाचा के चरित्र को सटीक दृष्टांत के साथ खोला है-'ऊपर से सख्त दिखने वाले जुद्दी चाचा का दिल नारियल की तरह मुलायम था।' (पृष्ठ संख्या-34)

नैरेशन, विस्तार, किस्सागोई कहानी की प्रकृति से नाभिनालबद्ध रहे हैं, जो कि आज भी हैं। देखे, जाने, बूझे गये विषयों, चरित्रों और घटनाओं से एकाकार होने उन्हें आत्मसात करने के बाद अपनी कलात्मक क्षमता के बूते जितना रच पाते हैं, वही कहानी बन जाती है। बेशक हिन्दी में कहानीकला के उस्ताद हैं-प्रेमचंद। जीवन की प्रति सृष्टि रचने के कारीगर हैं-रेणु और सृष्टि के भीतर से दूरगामी दृष्टि खोजने वाले कथाकार हैं-रवीन्द्रनाथ। कहानी 'बैरंग चिट्ठी' पारिवारिक सम्बंधों के जटिल ताने-बाने पर केन्द्रित ऐसी कहानी है। जो आजकल पनप रही-रिश्तों की टकराहट को सामने लाती है। कल्पना जी की कहानी-'माटी का आदमी' पारिवारिक चरित्रों के बीच संवाद, बहस की गर्माहट लिए हुए है। जहाँ कहानीकार स्वयं तटस्थ हैं, पीछे कहीं छिपी हैं और पात्र बहुत कुछ बयां करते हैं। सुप्रतिष्ठित कथाकार डॉ. सुभाष शर्मा ने अपने वैयक्तिक अनुभवों की आँच में पके हुए सामयिक मुद्दे को उठाया है। अमल सिंह भिक्षुक की कहानी-'एक रोटी की भूख' की शुरुआती पंक्तियाँ पढ़िए-'दोपहर ढलने को थी। धूप पेड़ों की झुकी डालियों से छनकर जमीन पर सुनहरी चादर बुन रही थी। कहीं-कहीं पत्तियों के साए ऐसे लगते मानो कोई अदृश्य प्राणी उनमें छिपकर देख रहा हो।' (पृष्ठ संख्या 82)

अंक की इन कहानियों में जाने, पहचाने, समझे, बूझे गये जीवन की धड़कन है। हमारी साँसों से आबद्ध विषयों की सहजता है और रोज-दर-रोज उठते- बैठते, भीतर-भीतर मथते शरीर का सत्य है। विषयों में वैविध्य है, मगर बेमिसाल अलहदापन नहीं। अलहदापन दृष्टि की विलक्षणता से आती है, सोच की बेलीकियत से पैदा होती है और दिखते हुए विषय की सात तहों में उतर पड़ने की अदम्य जिद से आती है। टालस्टाय, चेखव गोर्की या शरदचंद्र कहीं दूसरी दुनिया से विषय नहीं उठा लाते थे। किन्तु उनकी कलम जब साधारण से साधारण चरित्रों के मामूली सत्य का स्पर्श करती तो उनकी असाधारण संवेदनशीलता की लपट में तपकर विषय विलक्षण हो उठते थे। कहानी कहना कहानी नहीं है। कहानी लिखना भी कहानी नहीं है। न ही कहानी बतियाना कहानी है। कहानी है बजते हुए शब्द, कहानी है- हँसते हुए अर्थ। कहानी है-ध्वनि, कहानी है, दिल पर छाया नशा, कहानी है, पढ़ने के बाद छायी हुई यादें कहानी है-रोम-रोम भर उठी विषय की स्थायी गंध। अंक में उपस्थित कहानीकार पाठकों के भीतर अपनी कलम के प्रति विश्वास जगाने में सफल हैं।



प्रो. भरत प्रसाद

सुप्रतिष्ठित कवि-आलोचक गद्यकार।
विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।
कृतियाँ: 10 पुस्तकें (आलोचना), 2 पुस्तकें (कहानी संकलन),
शब्द-शब्द प्रतिबद्ध (मूल्यांकन), 3 पुस्तकें (सम्पादित)।
कई पुरस्कारों से सम्मानित।
संप्रति: प्रो. हिंदी विभाग।

संपर्क
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय
शिलांग-793022 (मेघालय)
मो.: 9077646022
ई-मेल: bharatharpur25@gmail.com

अंक से मूलबद्ध कविताई के रचनाकार हैं-नरेन्द्र पुंडरीक, माया गोला, नंदा पांडेय, पवन माथुर, पल्लवी मुखर्जी, महेश केशरी, भावना झा, नागेन्द्र सिंह, गंगोला और कवि हर्ष पाठक। पुंडरीक जी की कविता-'पिता के पास' एक असाधारण व्यक्तित्व पर साधारण कृतज्ञता की रचना है। साधारण इसलिए कि पिता के प्रति कोई नवोन्मेष, कोई अभिनव दृष्टि, कोई अलहदा आवेग नहीं तरंगित हुआ है। पिता के कद के तीन स्तर होते हैं। एक वह जो प्रकट है, सांसारिक है। एक वह जो सूक्ष्म है, अशरीरी है, भावात्मक है। तीसरा वह जो अधखिला या बेखिला रह गया जिसे पिता खुद नहीं जान सके कि वह क्या हैं, उस तीसरे कद का दरवाजा खोलने की चाभी केवल प्रकृति के पास होती है। माया गोला नाम पर्याप्त है-डॉ. लगाना कवियत्री बनने की कसौटी पर अतिरिक्त

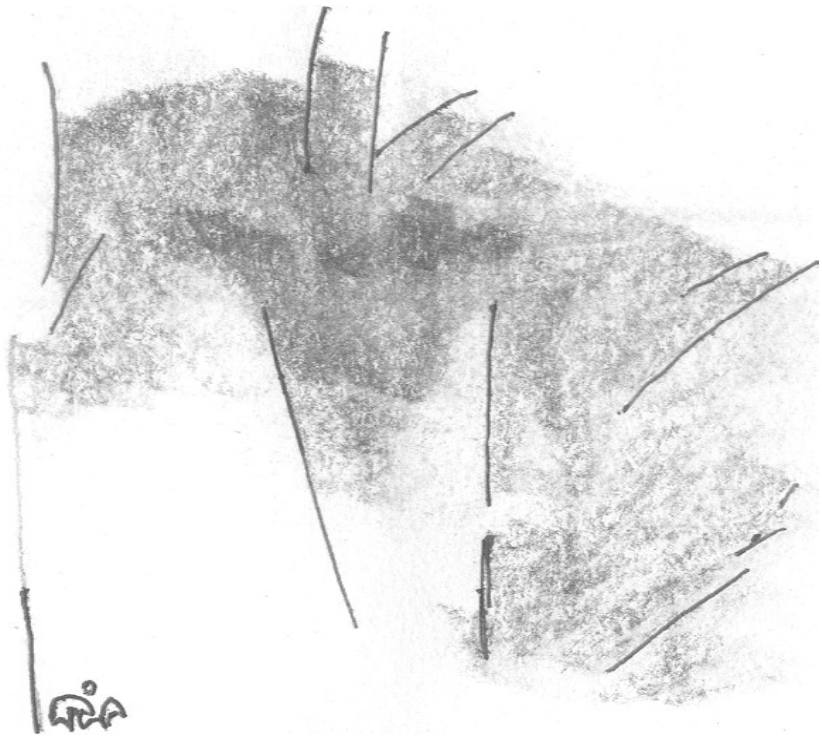
लगता है-ऑफिसियल, बल्कि एक हद तक कवि की उड़ान के आगे खड़ी चट्टान। कथात्मकता कहानी की जान है, किन्तु कविता की आँच पर पानी फेरने वाला। कविता के शब्द-शब्द प्राणधारी बीज की तरह सीने में पैबस्त हो जाएँ, समा जाएँ, भिन जाएँ, साँस-दर-साँस तब हुई कविता। कोशिश रहे कि कविता अर्थशंकुल हो, मंत्रमय हो, दृष्टिमंडित हो। इस निगाह से परखने पर माया गोला की कविता-गुनहगार बेहतर लगती है। आगे नंदा पांडेय हाजिर हैं, अपनी 'युद्ध' कविता के साथ। सधी हुई, दो टूक और यथार्थ प्रेरित कविताएँ हैं। परन्तु गौर कीजिए भारतीय कविताएँ वैश्विक कविता और हिन्दी कविता युद्धविरोधी कविताओं से अंटी पड़ी है। फिलिस्तीनी महाकवि महमूद दरवेश ने सारा जीवन स्वाहा कर दिया अपनी युद्ध विरोधी कलम के नाम। परन्तु हो क्या रहा है 'युद्ध की आग देश-देशांतर, दिशा-दिशांतर में फैल चुकी है। जानते हैं क्यों, क्योंकि युद्ध मनुष्य की स्थायी मानसिकता है। भूख, प्यास, वासना की तरह परम स्थायी। इसलिए युद्ध के विरुद्ध लिखना पानी पर लाठी पीटने जैसा है। हमें मुक्तिबोध से सीखना होगा, जो मनुष्य की मायावी मानस पर सीधे कलमी हमला बोलते थे। उन्हीं की दो पंक्तियाँ लीजिए–

मन की काली-सूनी अकादमी में।
कोई दिलचस्प नहीं आदमी में।।

बावजूद इसके नंदा जी की युद्धपरक कविताएँ चिंता को ठंडक पहुँचाती हैं कि युद्ध के विरुद्ध खड़े होने वाले सिरों की कतार बड़ी लंबी है। चलिए, कदम बढ़ाते हैं-पवन माथुर की ओर। दो लंबी कविताएँ, जिसमें दूसरी कविता है-'मैं तुम्हें इसलिए याद नहीं करता।' मगर अफसोस, दोनों कविताएँ नैरेशन के विस्तार का शिकार हो गयीं। विषय कितने मर्मी, कितने आत्मीय और कितने वैविध्यपूर्ण। किन्तु पवन जी ने अपने विषयों से साधक, भक्त, आशिक की तरह साक्षात्कार किया होता। काश मामूली से मामूली विषयों को सुमिरने की कला सीखी होती। अगर पेड़ को राम-राम की तरह याद करें, पेड़ सौ-सौ भुजाओं के साथ चित्त में साकार हो जाएगा। धरती को भर आँसू निगाहों से ताकें, धरती असीमता को धारण की हुई माँ हो जाएगी। इसी तरह बीज को जपो, पानी की पुकार लगाओ, हवाओं से कचहरी करो। सब बदल जाएँगे। संसार ने जैसा उनके बारे में कह दिया, फिर वैसे लगेंगे ही नहीं। जगत को कहे- कहा, ढंग से देखना बंद कर देना ही कवि हो जाना है। पल्लवी जी इधर, इन दिनों लगातार सक्रिय हैं, रच रही हैं, हस्तक्षेप कर रही हैं। यह खास महत्व का है, किन्तु सक्रियता की गहराई कितनी है, तैयारी कैसी है, गंभीरता कितनी है, यह अधिक मायने रखता है। 'सवाल करती है मुनिया' कविता पर निगाह गयी, मार्मिक कविता, सहज, बोधगम्य। स्त्री उनकी कविताओं का स्थायी विषय है, जो किसी कवयित्री की ताकत है और कमजोरी भी। महेश केशरी अभिनव स्वर हैं हिन्दी कविता के। अभी उन्हें साधना है, शब्दों का संयम। कविता में शब्दों की कंजूसी बड़े फायदे की सिद्ध होती है। जो कवि अनमोल धन की तरह एक-एक शब्द बहुत संभाल कर खर्च करता है, वह बड़ी कीमती रचना हमें सौंप जाता है।

इन कवियों के काव्य मर्म की पाठकीय थाह लेने के बाद यह तो शिद्दत से महसूस होता है-हिन्दी कविता को फिर किसी औघड़ कवि की खोज है। कोई मुक्तिबोधी आहट कहीं से सुनाई दे, कान तरस रहे हैं। फिर हिन्दी कविता अपनी नवोन्मेषी करवट ले, जी चाहता है। हमारे अपने बीच से ही किसी को यह दायित्व निभाना होगा। अपने आत्म को सृजन की कठिनतम कसौटी पर कहना होगा। क्योंकि एक-एक हृदय को अपने अर्थों के आवेग से आंदोलित करने वाली कविता का साधक किसी और मिट्टी में नहीं पला-बढ़ा होता।

आलोचक प्रो. प्रेम तिवारी ने हिंदी दलित कविता को निगाहों में उठाया है। समुचित और सारवान मूल्यांकन के लिए मूलतत्व हैं-तटस्थता, पक्षधरता के प्रति अनुराग और मनुष्यता जीवी समाज के प्रति सघन दायित्व का भाव। वरना विमर्शों की चौखट में कैद होकर रहना एक बौद्धिक ड्यूटी बनकर रह जाता है। प्रेम तिवारी सजग वैचारिक हैं, आत्मसात किए हुए हैं-श्रमिक जीवन के यथार्थ को। इसलिए, उनकी आलोचना दृष्टि अनिर्णय की उलझन से मुक्त है। अध्ययन प्रेम तिवारी की जमीनी शक्ति है। प्रस्तुत अंक में प्रेम तिवारी की कलमी पड़ताल के दायरे में शामिल हुई है-दलित लेखक संघ के द्वारा संकलित प्रकाशित पुस्तक-



'दलित कविताओं की तीन पीढ़ियाँ: एक संवाद।' मूल्यांकन की शुरुआत कुछ इन शब्दों से हुई है-'संकलन की कविताओं को पहली बार पढ़ने के बाद जैसी तकलीफदेह अनुभूति होती है, उसे लंबे समय तक भुलाया नहीं जा सकता। ये कविताएँ हमारी चेतना को भीतर तक छीलकर लहूलुहान कर देती हैं। कविता की इस दुनिया का यथार्थ एक दुरू स्वप्न की तरह हमें बेचैनी और छटपटाहट से भर देता है।' (पृष्ठ संख्या-118)

दलित कविता अदम्य प्रतिकार की गूंज है, उपेक्षित, अपमानित और प्रताड़ित निर्दोषों की अपराजेय पुकार है और वह है ऐसी लकीर जिसको छुए बगैर कोई कवि मनुष्यता के जिम्मेदार रचनाकार नहीं कहला सकता। कहानी, कविताएँ, उपन्यास आत्मकथा, जीवनी भला कौन-सी विधा रह गयी, दलित सत्य को उजागर करने से। परन्तु अफसोस! एक तरफ दलित कलम चलती है, दूसरी तरफ किसी दलित को बांधकर पीट दिया जाता है। एक ओर दलित कवि की पुस्तक का लोकार्पण होता है, दूसरी तरफ किसी दलित के बैठने से अशुद्ध हुई कुर्सी का शुद्धिकरण किया जाता है। आज अल्पसंख्यक, दलित और मुस्लिम समाज न मुक्ति की साँस ले पा रहा, न आत्मसम्मान के साथ जी पा रहा, न ही बहुसंख्यक के आगे सिर उठाकर खड़ा हो पा रहा। प्रेम तिवारी का मूल्यांकन पुस्तक में निहित काव्य मर्म की पड़ताल है जिसके कारण आलोचना दृष्टि को खुलकर उड़ान भरने का मौका कम मिलता है। फिर भी जहाँ कहीं अपनी अर्जित की हुई वैचारिकी को रखने का मौका मिला है, प्रेम तिवारी देर नहीं लगाते हैं, चूके नहीं हैं। पुनः पढ़िए-हिन्दी की दलित कविता की जमीन बहुत उबड़-खाबड़ है। ये कविताएँ खुरदुरे जीवन की भीषण रगड़ से निर्मित हुई हैं। इनमें दलितों के प्रति घोर हिंसा है, रुदन है। पूर्वजों के दमन और भूख की ऐतिहासिक स्मृतियाँ हैं। प्रतिरोध है, बाबा साहब के प्रति प्रेम, आदर और श्रद्धा का भाव है।' (पृष्ठ संख्या-121)

अंक का अगला जरूरी लेख युवा आलोचक आदित्य विक्रम सिंह का है। शीर्षक स्वयं में एक प्रश्नपूर्ण विचार लिए हुए-'फिलिस्तीन सिर्फ देश का नाम नहीं'। फिलिस्तीन का मुक्ति संघर्ष अब दुनिया की सबसे लंबी मुक्ति गाथाओं में शुमार हो चुका है। यासार अराफात जैसे कितने जनमुखिया इस मुक्ति के स्वप्न की भेंट चढ़ गये। फिलिस्तीन आज भी मुक्त नहीं है। इजराइल की विनाशकारी नीति से त्रस्त फिलिस्तीन अब अपनी मुक्ति पाने की अंतिम साँसें गिन रहा है। आदित्य विक्रम सिंह की पड़ताल सिर्फ युद्ध विरोधी कविताओं का लेखा-जोखा पेश करना नहीं है। बल्कि वे वैचारिक हस्तक्षेप करते हैं-'यह मानव सभ्यता की उस त्रासदी का प्रतीक है, जिसमें मातृभूमि, पहचान और अस्तित्व तक दांव पर लग जाते हैं। विस्थापन, उपनिवेशवाद, धार्मिक अस्मिता और दमनकारी सत्ता-ये सब मिलकर फिलिस्तीन संघर्ष को एक ऐसी गाथा बनाते हैं, जिसने साहित्यकारों और कवियों को गहराई से झकझोरा। (पृष्ठ संख्या 122)

डॉ. कुमारी उर्वशी ने सिनेमा को हाथों में उठाया और लिखने का संकल्प लिया, आदिवासी जीवन पर। विषय देखिए-'हिन्दी सिनेमा में आदिवासी जीवनः यथार्थ, संस्कृति और संघर्ष।' इस सिलसिले में समीक्षिक ने मृगया, आक्रोश, न्यूटन, चक्रव्यूह, लाल सलाम जैसी फिल्मों का अत्यंत सघन, तथ्यपूर्ण और रोचक विश्लेषण पेश किया है। मृगया फिल्म पर निष्कर्ष महत्वपूर्ण है। वे लिखती हैं-'मृगया भारतीय सिनेमा की उन विरले कृतियों में हैं, जो केवल एक कथा नहीं कहतीं, बल्कि अपने समय, समाज और मनुष्य की विडम्बनाओं का गहन दस्तावेज बन जाती हैं।' (पृष्ठ संख्या -१२६)

फिल्म 'चक्रव्यूह' नक्सलवाद की अनसुलझी समस्या को प्रस्तुत करती है। यह नक्सलवाद वह अनुत्तरित प्रश्न है, जिसे समझने की कोशिश न सरकारें करती हैं, न प्रशासन। नक्सलवाद अचानक से पैदा हो गयी चुनौती नहीं है। सत्ता, जिसके पास अकूत ताकत है, वह अपने ही तानाशाही अंदाज में हर प्रश्न को सुनना, समझना जानती है। जबकि नक्सलवाद सदियों से उपेक्षा, अपमान, तिरस्कार का दंश झेलते आम भारतीयों की बगावत है। हिंसात्मक है, विनाशकारी भी, किन्तु इस भयावह रास्ते पर नक्सली चल क्यों पड़े, इसे जाने, स्वीकार किए बगैर इस गहरी समस्या का स्थायी समाधान निकलने वाला नहीं। उर्वशी जी का निष्कर्ष 'लाल सलाम' फिल्म के संदर्भ में देखिए-'लाल सलाम' भारतीय सिनेमा में उन अपेक्षाकृत कम चर्चित, किन्तु महत्वपूर्ण फिल्मों में गिनी जा सकती है, जो आदिवासी अंचलों में व्याप्त राजनीतिक तनाव, हिंसा और प्रतिरोध की जटिल दुनिया को समझने का प्रयास करती हैं।' (पृष्ठ संख्या, 130)

डॉ. अनुज का लेख राष्ट्रकवि दिनकर की समकालीन भूमिका को नव परिभाषित करता है। दरअसल कालगामी रचनाकार न केवल समय का अतिक्रमण करते हैं, बल्कि वे सवालों का, व्याख्या का, मूल्यांकन और निष्कर्षों का भी अतिक्रमण करते हैं। हम अपने-अपने अनुसार ऐसे मानक सर्जकों का सत्य खोजते जरूर हैं, किन्तु इनकी रचनाओं में बजती हुई वे मद्धिम, महीने, अनसुनी ध्वनियाँ शेष रह जाती हैं, जिनकी व्याख्या शब्दों में नहीं हो सकती। आलोचना चूक जाती है यहाँ। आलोचक भी ऐसी विलक्षण ध्वनियों के आगे कलम रख देता है। यही अलक्षित किन्तु स्थायी अर्थ-ध्वनियाँ ही रचना और रचनाकार को हर युग के लिए प्रासंगिक बनाती हैं।

कहना जरूरी है कि 'परिकथा' हिन्दी साहित्य में अपनी जरूरी भूमिका सुनिश्चित करने वाली पत्रिका है। इसका एक दुर्लभ कारण है, निरंतरता और गुणात्मक यात्रा। वैचारिक वैविध्य से भरपूर यह पत्रिका साहित्यिक पत्रकारिता में एक बड़ी उम्मीद को बचाए हुए है। उम्मीद यह कि मुक्ति के सपने भी सच होते हैं। मनुष्यता के हक ने उठ खड़ा युद्ध जीता जा सकता है। सृजन की हर विधा में नयी क्लासिकी की खोज खत्म नहीं हुई है। हर काल अपना क्लासिक गढ़ता है, जिसकी ऊँचाई पहले के शिखरों की तरह लगे न लगे, किन्तु अपने समय के ताने-बाने से छाल की तरह चिपका हुआ जीता है।

❑❑❑

साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक समकालीनता का परिप्रेक्ष्य

बैजू बावरा



बैजू बावरा

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क

ग्राम-मसदी, हाता, पत्रालय-सुलतानगंज
जनपद-भागलपुर-813213 (बिहार)
मो.: 9709898450
ई-मेल: baijoobavara1@gmail.com

मैं एक साधारण-सा नवोदित रचनाकार हूँ, जिसने अभी तक हिन्दी साहित्य को एक भी तुच्छ या विशिष्ट कृति योगदानस्वरूप नहीं दी है। परन्तु, पत्र-पत्रिकाओं तथा नवीन प्रकाशित पुस्तकों का बहुप्रतीक्षित पाठक रहा हूँ। साहित्यिक सामग्रियों के अध्ययन-मनन के उपरान्त प्रतिक्रियाओं को व्यक्त करने का लोभ संवरण नहीं कर पा रहा हूँ।

सर्वप्रथम मुझे यह बताते हुए अत्यन्त प्रसन्नता हो रही है कि मैं 'परिकथा' का लम्बे अरसे से एक सुधी पाठक रहा हूँ।

जुलाई-सितंबर, 2026 के 112 अंक के संपादकीय में बहुत ही ज्वलन्त मुद्दा उठाया गया है। संपादक महोदय ने साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं की मरणासन्न स्थिति का गहन विवेचन प्रस्तुत किया है। जिस मासिक, त्रैमासिक या पाक्षिक के प्रकाशन से साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं वैचारिक विमर्श की कलकल निनाद धारा प्रवाहित होती है, उसी पर आज शनै-शनैः संकट की काली घटा घिर आई है।

एक समय था, जब धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान सारिका, हिन्दी डाईजेस्ट, प्रदीप, विश्वमित्र, आर्यावर्त सरीखी पत्र-पत्रिकाएँ हिन्दी जगत की थाती थीं और एक समय ऐसा भी आ गया है, जहाँ स्थापित पत्रिकाएँ बन्द हो चुकी हैं।

इस अंक में प्रो. शिवचन्द्र प्रसाद द्वारा लिखित नामवर सिंह जन्मशती विशेष पर उनके साहित्यिक अवदान एवं व्यक्तित्व की विराटता पर जानकारियाँ मानीखेज हैं। डॉ. नामवर सिंह के आन्तरिक एवं बाह्य संपूर्ण पक्षों का सांगोपांश निरूपण किया गया है। ऐसे बहुकोणीय मनीषी के सम्बन्ध में लेखक का कथन अक्षरशः सत्य है कि अन्य लब्ध-प्रतिष्ठि आलोचकों-समालोचकों, समीक्षकों, अध्येताओं से इतर इन्होंने अपना पथ खुद चुना और उसका पथिक बनकर मनसा-वाचा-कर्मणा अविराम अग्रसर रहे। बिहार के विश्रुत आलोचक डॉ. खगेन्द्र ठाकुर ने भी उत्तर आधुनिकता के मानकीकरण के अधिष्ठापन में नामवर सिंह की महत्ती भूमिका की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। मशहूर लेखिका ममता कालिया से साक्षात्कार में उनकी जमीन से जुड़ी एकाधिक कहानियाँ परत-दर-परत खुलती हुईं प्रतीत होती हैं। इस अंतर्वीक्षा में उन्होंने अति महत्त्वपूर्ण बात बताई है कि वर्तमान में सारे रचनाकार अति शीघ्र बहुचर्चित हो जाते हैं, परन्तु उनके पास 'गंभीरे चिद् भवति गाधम' की आर्ष उक्ति की महत्ता का परिज्ञान नहीं रहता है। इससे आगे चलकर ममता कालिया ने साहित्य के तन पर कला के आवरण के सकारात्मक पहलू पर जोर दिया है, जिससे नई पीढ़ी सर्जनात्मक कुशलता का वरण कर सकती हैं।

बहुप्रशंसित कथाकार नर्मदेश्वर की कहानी 'सूई-धागा' एक अप्रतिम कहानी है। इस रचना को आधुनिक हिन्दी कथा साहित्य की श्रेष्ठ सौ कहानियों में परिगणित किया जाना चाहिए। इसकी भाषाई संप्रेषणीयता परिपक्व और प्रभावान्विति सापेक्ष है।

नरेन्द्र पुण्डरीक की कविता 'समय की पीठ पर' और 'जब हम प्यार कर रहे होते हैं' उल्लेखनीय है। दोनों कविताओं में भाषा की रानगी है, युग की आवाज और जज्बात की आलोचना है। ऐसी अद्वितीय रचना की सांगीतिक अनुगूँज एवम् शैलीगत प्रहार दीर्घकाल तक याद की जाती है। कवि महेश केशरी की कविता 'तब घर में क्या बचेगा' एक पृथक् तेवर की रचना है। इस अंक में साहित्य की विभिन्न विधाओं की ऐसी अनेक रचनाएँ प्रकाशित की गईं हैं, जो 'परिकथा' की विशेष उपलब्धि कही जाएगी।

इन सब से इतर अगर हम और गहराई से इस अंक की संपादन-कुशलता का सम्यक् मूल्यांकन करना चाहें, तो हम देखते हैं कि डॉ. अनुज द्वारा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के पश्चात् दिनकर के व्यक्तित्व-कृतित्व पर प्रकाश डाला गया है। यद्यपि रामधारी सिंह दिनकर राष्ट्रकवि गुप्त के बाद और सोहनलाल द्विवेदी तथा शिवमंगल सिंह सुमन की 'जननी जन्भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी' की राष्ट्र- परंपरा के पूर्व के प्रखर कवि थे, तथापि इन्होंने 'तुम रजनी के चाँद बनोगे या दिन के मार्त्तण्ड प्रखर' या 'कलम, आज उनकी जय बोल' जैसी युगचेतनाप्रधान राष्ट्र संपृक्त पंक्तियाँ रचकर अपने जीवनकाल में ही किंवदन्ती बन गए।

अन्ततोगत्वा, 'परिकथा' के आद्यन्त परायण के फलस्वरूप हम देखते हैं कि वर्तमान हिन्दी साहित्य की दशा एवं दिशा को एक नया आयाम देती यह त्रैमासिक अभूतपूर्व भूमिका निभा रही है। अपनी साहित्यिक मूल्यगत प्रतिबद्धताओं के साथ 'परिकथा' एक पत्रिका ही नहीं, अपितु एक समग्र मुहिम का नाम है। यह पठनीयता का पर्याय बन चुकी है।

'परिकथा' की पहचान अपने निष्पक्ष संपादन के रूप में समादृत है।

❑❑❑

नये-पुराने लेखकों की पसंदीदा पत्रिका : 'परिकथा'

हीरालाल नागर

जुलाई-सितंबर, 2026 का संयुक्तांक है परिकथा का 112वां अंक। यह भी 160 पृष्ठों का विशेषांक है, जिसमें पढ़ने की पर्याप्त सामग्री है। 11-12 कहानियाँ, 9-10 कवियों की कविताएँ, पाँच किताबों की समीक्षाएँ और करीब आठ नियमित कॉलमों में स्तरीय सामग्री। किसी एक अध्ययन प्रिय व्यक्ति के लिए यह किसी प्रकार से कम सामग्री नहीं कही जा सकती। अगर इसमें आलोचनात्मक टिप्पणियाँ और परिक्रमा के रूप में गोष्ठियों की सूचना में भी शामिल कर ली जाएँ तो एक सुधी पाठकों के के लिए बड़ी ही संतुलित सामग्री का चयन हर अंक में किया जाता है।

पहले 'परिकथा' के इस अंक में संपादक के दृष्टिकोण को समझ लेना जरूरी लगता है। जो हिन्दी में प्रकाशित पत्र-पत्रिकाओं के प्रकाशन और प्रसारण को लेकर आनेवाली कठिनाइयों पर विचार किया गया है। उनकी यह चिन्ता वाजिब लगती है-जब वे लिखते हैं कि सच यह है कि अधिकांश साहित्यिक पत्रिकाएँ बिक्री आधारित लाभ-हानि की संगणना से नहीं चल रही हैं । इनके अपने स्वप्न हैं, इनके अपने रास्ते हैं, प्रतिकूलताओं, और मुश्किलों से लड़ते-भिड़ते रहने और टिके रहने का इनका अपना जुनून है। (पृष्ठ-9)।

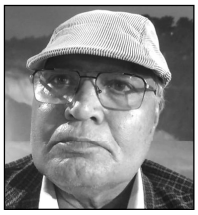
'परिकथा' के संपादक शंकर अपने संपादकीय में स्पष्ट करते हैं कि अगर साहित्यिक पत्रिकाएँ निकालने का जुनून है तो संपादकों तथा लेखकों को एकजुट होकर इसके रास्ते पर आनेवाली चुनौतियों का सामना करना चाहिए।

'अब पत्रिका निकालने वाले लेखक, उससे जुड़े लेखकों-पाठकों की एकजुटता एक जरूरी स्थिति हो गई है। बिक्री के कम होने के इस दूसरे दौर में जो स्थितियाँ आयी हैं, वे इन पत्रिकाओं की दीर्घजीविता को कम कर सकती है।' (पृष्ठ-11)

डॉ. नामवर सिंह की जन्मशती के उपलक्ष में इस अंक में प्रकाशित शिवचंद्र प्रकाश, धनेशदत्त पांडेय के लेख पठनीय हैं। इन लेखों में डॉ. नामवर सिंह के व्यक्तित्व तथा कृतित्व से उत्पन्न साहित्य की विविध धाराओं पर एक विहंगम दृष्टि जाती है और वहाँ से एक नया विचार आता है।

इस अंक में सुप्रसिद्ध लेखिका ममता कालिया का डॉ. अनुज द्वारा लिया गया इंटरव्यू उल्लेखनीय है। यह साक्षात्कार में यह स्पष्ट होता है कि ममता कालिया साहित्य की चिर-नवीनता पर विश्वास करती हैं। वे कहती हैं, 'साहित्य की आग कभी ठंडी नहीं पड़ती-एक चिनगारी कहीं से मिल जाती है, कहीं कोई दिया सलाई जला देता है।' साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित लेखिका ममता कालिया ने अपने वक्तव्यों से इस अंक को कुछ खास बनाया है। डॉ. अनुज के एक सवाल-मुंबई और दिल्ली में आप क्या अंतर देखती हैं, के जवाब में ममता जी कहती हैं-'मुंबई में लेखकों की वैरायटी बहुत मिलती है। दिल्ली में मैंने देखा लोगों के क्लोन हैं। सब एक तरह से दिखने वाले लोग हैं जैसे क्लोन हों। इस कॉलोनी में आप जिससे बात कीजिए, बस नंबर का फर्क है, 303 की जगह 308 में चले जाइए या 803 में चले जाइए, सब एक जैसे लोग मिलेंगे, फोटोग्राफ्स सारे।' (पृष्ठ 29)

दिल्ली के लेखकों पर हिन्दी की प्रतिष्ठित लेखिका की यह टिप्पणी गौरतलब है। नये लेखकों पर उनकी टिप्पणी मायने रखती है। लेखक के कद का मूल्यांकन कैसे किया जाए-यह ममता कालिया के सामने एक बड़ी समस्या है। ममता कालिया जी कहती हैं-'आज क्या होता है कि नाम तो बहुत चर्चित हो गया, लेकिन उसके अंदर बहुत व्यापक दृष्टि नहीं है। अब उसकी कविता पढ़कर या प्रोज पढ़कर आप लिखेंगे तो क्या लिखेंगे। मैं नये-नये जो आए हैं, उनकी बात कर रही हूँ। एक-दो बहुत अच्छा लिखते हैं और नये तरीके से लिख रहे हैं, लेकिन उनमें कोई ऐसा नहीं है जो इंस्पायरिंग का प्वाइंट बने।'



हीरालाल नागर

विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित।

संपर्क

बी-174/41सी, गली नं. 2
जीवन ज्योति स्कूल के पास, करावल नगर रोड
दिल्ली-110090
मो.: 9968551414

'परिकथा' का एक स्थाई स्तंभ है-चौपाल, जिसे नर्मदेश्वर गाँव की कहानी पर लिखते हैं। इसमें गाँव की कहानी होती है। इस अक में 'सुई-धागा' नाम से कहानी है। एक अंक में दस-ग्यारह कहानियाँ कम नहीं होतीं। इस वर्ग और हर श्रेणी का पाठक अपनी कहानी ढूँढ़ ही लेता है और अपने तरीके से उसकी व्याख्या करने को स्वतंत्र है। सूर्यनाथ सिंह के उपन्यास पर अंकित नरवाल की लंबी बातचीत है।

कविताएँ पढ़ सकते हैं, लेकिन उन्हें अलग से रेखांकित न हीं कर सकते। दलित कविता पर प्रो. प्रेम तिवारी का आलेख-दलित कविता की अंतर्वस्तु और स्वरूप पर विचार करते हुए विचार करने योग्य बन गया है। इस अंक में सिनेमा साहित्य पर पठनीय सामग्री है। समानांतर सिनेमा पर डॉ. उर्वशी का लंबा आलेख है-ठीक लग रहा है । जबकि दिनकर की कविता पर अनुज का आलेख है। डॉ. होता ने डॉ. सूरज पालीवाल की किताब 'मेरे नक्शे के मुताबिक' और 'प्रज्ञा की किताब 'दाग दाग उजाला' की समीक्षा लिखी है। मंजुश्री की किताब 'आखिरी पायदान पर खड़ा आदमी' की समीक्षा डॉ. अंजु शर्मा ने समीक्षा की है। कुल मिलाकर यह अंक भी पाठकों के सामने पढ़ने की एक बड़ी चुनौती पेश करता है।

❑❑❑

समय, समाज और प्रतिरोध का रचनात्मक दस्तावेज : परिकथा का अंक 111

सत्यम सत्येन्द्र पाण्डेय

समकालीन हिन्दी साहित्य में परिकथा उन विरल पत्रिकाओं में है जो साहित्य को केवल रचनात्मक अभिव्यक्ति का माध्यम नहीं, बल्कि अपने समय से आलोचनात्मक संवाद का क्षेत्र मानती हैं। अप्रैल-जून का अंक (111) इसी परंपरा का सशक्त विस्तार है। यह अंक अपने वैचारिक सरोकारों, रचनात्मक विविधता और समय के ज्वलंत प्रश्नों से निर्भीक मुठभेड़ के कारण न केवल संग्रहणीय है, बल्कि गंभीरता से पढ़े जाने की माँग भी करता है। डॉ. नामवर सिंह की जन्मशती पर केंद्रित तीन महत्त्वपूर्ण आलोचनात्मक आलेख, तीन समकालीन उपन्यासकारों के साथ उनकी रचना-प्रक्रिया पर केंद्रित संवाद, पंद्रह कहानियाँ, लगभग ग्यारह कवियों की कविताएँ, दिनकर और शंभू बादल की कविता पर गंभीर आलोचनात्मक लेख, नियमित स्तंभ और पुस्तक समीक्षाएँ-ये सब मिलकर इस अंक को समकालीन हिन्दी साहित्य की बहुआयामी उपस्थिति का प्रतिनिधि दस्तावेज बना देते हैं।

अंक का आरम्भ संपादकीय से होता है, जो हमेशा की तरह पत्रिका की वैचारिक दिशा और नैतिक पक्षधरता को स्पष्ट करता है। संपादक शंकर साहित्य को अपने समय के राजनीतिक और मानवीय प्रश्नों से अलगाकर नहीं देखते। इस बार 'मिनाब की बच्चियाँ' के बहाने वे पश्चिम एशिया में जारी साम्राज्यवादी युद्ध की विभीषिका का विश्लेषण करते हैं। यह संपादकीय युद्ध को केवल भू-राजनीतिक संघर्ष के रूप में नहीं, बल्कि मनुष्यता के विरुद्ध संगठित हिंसा के रूप में देखता है। युद्धोन्माद, राष्ट्रवादी प्रचार और सामरिक सफलताओं के शोर के बीच यह पाठक का ध्यान उन मासूम बच्चियों और आम नागरिकों की ओर ले जाता है जो हर युद्ध में सबसे पहले और सबसे अधिक मारे जाते हैं। इस प्रकार संपादकीय सत्ता-निर्मित आख्यानों के बरक्स संवेदना की राजनीति का प्रस्ताव करता है और पाठक को मनुष्य की ओर खड़े होने का नैतिक विवेक प्रदान करता है।

डॉ. नामवर सिंह की जन्मशती पर प्रकाशित तीनों आलेख इस अंक की उल्लेखनीय उपलब्धि हैं। अरुण कुमार का लेख नामवर सिंह के आलोचना-कर्म के अनेक महत्त्वपूर्ण पक्षों को व्यापक परिप्रेक्ष्य में सामने लाता है। यद्यपि कहीं-कहीं उसका अनावश्यक विस्तार उसकी विश्लेषणात्मक धार को थोड़ा कम करता है, फिर भी वह अनेक विचारोत्तेजक स्थापनाओं के कारण ध्यान आकर्षित करता है। प्रो. मृत्युंजय सिंह ने नामवर सिंह की वाचिक आलोचना की परंपरा तथा विशेष रूप से उनकी कहानी-आलोचना की विशिष्टता पर केंद्रित एक सुविचारित आलेख लिखा है, जो उनकी आलोचनात्मक पद्धति की नई समझ विकसित करता है। वहीं पूनम सिंह निजी संस्मरणों से आरम्भ करते हुए नामवर सिंह की छायावाद संबंधी आलोचना-दृष्टि का सूक्ष्म विवेचन करती हैं और उनके व्यक्तित्व के मानवीय तथा वैचारिक पक्षों को एक साथ उद्घाटित करती हैं। तीनों आलेख मिलकर नामवर सिंह को श्रद्धांजलि भर नहीं देते, बल्कि उनके आलोचनात्मक अवदान का पुनर्पाठ भी प्रस्तुत करते हैं।

इस वैचारिक वातावरण के बीच शैलेन्द्र चौहान की युद्ध-विरोधी कविताएँ विशेष रूप से ध्यान आकर्षित करती हैं। वे युद्ध की अमानवीयता को केवल भावनात्मक स्तर पर नहीं, बल्कि सत्ता, हिंसा और साम्राज्यवादी वर्चस्व की आलोचना के रूप में प्रस्तुत करती हैं। ऐसे समय में जब युद्ध को राष्ट्रवाद और शक्ति के उत्सव में बदल देने की कोशिशें तेज हैं, ये कविताएँ मनुष्य और शांति के पक्ष में एक आवश्यक काव्यात्मक हस्तक्षेप के रूप में पढ़ी जानी चाहिए।

अंक का अगला हिस्सा बहुत सामयिक हैं जिसमें हाल फिलहाल के उपन्यासों पर तीन रचनाकारों के साथ बातचीत समाहित है। प्रतिष्ठित उपन्यासकार संजीव के साथ उनके हालिया प्रकाशित उपन्यास 'ज्योतिकलश' के बारे में युवा लेखक अजय महताब ने बातचीत की है। यह उपन्यास ज्योतिबा फुले के जीवन संघर्ष पर केंद्रित है। गरिमा श्रीवास्तव से उनके उपन्यास 'आऊशवित्ज: एक प्रेमकथा' पर नई पीढ़ी की सुप्रसिद्ध लेखिका प्रज्ञा ने चर्चा की है। यह उपन्यास नाजीवादी यातना शिविर के बहाने प्रेम को क्रूरता के मुकाबले हथियार मानने की रचनात्मक आवश्यकता से उपजा है। इसी तरह प्रख्यात कथाकार योगिता यादव से उनके उपन्यास 'ख्वाहिशों के खाण्डववन' के बारे में हमारे प्रिय साथी और युवा कहानीकार जितेन्द्र बिसारिया की बातचीत भी बहुत महत्वपूर्ण है।

राकेश कुमार सिंह अपने आलेख में आदिवासी आंदोलन पर केंद्रित हिन्दी साहित्य खासकर उपन्यासों की विवेचना करते हैं। पत्रिका के स्तंभ 'चौपाल: गाँव की कहानी' के अंतर्गत इस बार वरिष्ठ कहानीकार नर्मदेश्वर की कहानी 'ग्रह शांति' प्रकाशित की गई है। यह कहानी हाल ही में बनारस से कर्मकांड की पढ़ाई करके आए युवा पुरोहित, उनके यजमान